शोध मंथन, Impact Factor 6.726 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255 (e): 2454-339X
Vol. X, No.II, pp (535-542) April - June 2019

पंचायतों में महिलाओं की भागीदारीः दशा और दिशा

डॉ0 मीनाक्षी माहेश्वरी
राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विष्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
Email -kukumaheshwari@gmail.com

सारांश

भारतीय संविधान का सम्बन्ध तत्कालीन आवश्यकताओं के अतिरिक्त उन राजनैतिक विचारधाराओं के दबाव से भी है, जो तत्कालीन शासकों के मन्तव्य की पूर्ति करने में सहायक या बाधक होती है। स्वाभाविक है कि अब तक के आम पंचायती चुनावों में भी भारी उथल–पुथल हुई उनका असर भी संवैधानिक संशोधनों पर पड़ा है। भारत में किए गए निरन्तर संशोधनो पर पड़ा है। भारत में किए गए निरन्तर संशोधनो का यह अर्थ भी लगाया जाता है कि संविधान में संशोधन के जो अधिकार हमारी पंचायतों को प्राप्त है, उनके दुरुपयोग की संभावनाएं भी है क्यो कि इन अधिकारों का प्रयोग अत्याधिक निजी स्वार्थों या राजनीति में बने रहने के लिए हमारी पंचायतों द्वारा बिना किसी उचित आधार के भी किया जा सकता है, यद्यपि यह भय अभी तक निराधार सिद्ध हुआ है।

प्रस्तावना

वृहद परिप्रेक्ष्य में यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या संविधान संशोधन की रणनीति द्वारा महिलाओं की पंचायतों में राजनीतिक सहभागिता बढ़ाने जैसे बुनियादी एवं संवेदनशील मुद्दों को सुलझाया जा सकता है। इसका उत्तर अत्यन्त जटिल है, किन्तु इतना अवश्य है कि संविधान संशोधन एक आवश्यक एवं ठोस धरातल प्रस्तुत करें अगर जिस पर ऐसा राजनीतिक वातावरण तैयार किया जा सकेगा जो महिलाओं के पक्ष में हो। पंचायतीराज संस्थाओं का अनुभव हमारे समक्ष है, आगामी परिदृश्य और अधिक सकारात्मक होगा ऐसी उम्मीद की जा सकती है।

भारत में स्थानीय स्वायत शासन का अस्तित्व प्राचीन काल से रहा है। उस समय भी महिलाओं की भागीदारी हुआ करती थी। स्वतंत्रता संघर्श के क्रम में राजनीतिक और सामाजिक प्रक्रिया में महिलाओं के महत्त्व को समझा गया और उन्हें उचित स्थान मिला। महिलाओं को राजनीति क्षेत्र में भागीदारी देने के लिये संविधान में कुछ प्रावधान किये गये तथा पंचायतों में महिलाओं को आरक्षण दिया गया। अब महिलाएँ भी पंचायतों के काम में पुरुषों को कन्धे मिलाकर चल रही है।

भारत में पंचायतों का अस्तित्व बहुत पहले से है परन्तु 1992 में सरकार ने 73 वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा इसे पुनर्जीवित करने का प्रयास किया तथा यह अधिनियम

1993 मई से कार्य रुप में आया। महिलाओं को आरक्षण देने का मुद्दा 1985–86 में उठा उसी वर्श केन्या के नैरोबी में एक राष्ट्रीय दस्तावेज पेश किया जिसमें महिलाओं के विकास का समुचित प्रबन्ध किया गया। इस दस्तावेज को नेषनल परस्पेक्टिव प्लान के नाम से जाना जाता है। भारत के राजनीतिक इतिहास में यह पहला समय था जब स्थानीय स्वाषासित संस्थाओं में एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिये आरक्षित किए गए। वह संविधान संषोधन बलवंत मेंहता समिति (1957) और अषोक मेंहता समिति (1978) की सिफारिष थी कि निर्वाचित प्रतिनिधि तक ही षक्ति सीमित नहीं होना चाहिये। इस समिति की सिफारिषों के आधार पर सरकार के पंचायती राज व्यवस्था लागू की।

जब हम अपने समाज को देखते है तो पाते है कि हमारे समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग जो महिलाओं का है निश्चित रुप से सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। इनकी स्थिति को देखते हुए हम निःसंकोच ऐसे वर्ग में रख सकते है जिनके विकास के लिए विषेश कदम उठाये जाने की आवश्यकता है।[1]

भारत के संविधान निर्माताओं ने इस बात को समझा था। संविधान के अनुच्छेद 15 में यह स्पष्ट रुप से कहा गया है कि लिंग के आधार पर महिलाओं के साथ किसी भी प्रकार से भेदभाव नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद 15(3) में भी स्पष्ट रुप से महिलाओं और बच्चों के लिए राज्य को विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति दी गयी है।

प्राचीन काल से ही हमारे देश में पंचायत की परम्परा रही है। इस परम्परा की जड़े इतनी गहराई तक गयी कि हमारे ग्रामीण समाज की एक सुदृढ़ व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी। पंचायते प्राचीन काल से ही सामाजिक जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करती रही है। समय के साथ–साथ शासक बदले किन्तु इनसे पंचायतों का काम–काज प्रभावित नहीं हुआ। पूर्ववत चलता रहा। इसका प्रमुख कारण यह भी था कि शासको ने पंचायतों की कार्य – प्रणाली में हस्तक्षेप की अनावश्यक चेष्टा नहीं की। मुगल शासनकाल तक इस व्यवस्था के साथ किसी भी प्रकार की छेड़खानी नहीं हुई। अंग्रेजों ने अपने शासनकाल में ऐसे बहुत सारे प्रयास किये जिससे इस सुदृढ़ व्यवस्था को आघात पहुँचा। जिसके परिणाम अंगेजी शासन के लिए भी घातक रहे। ब्रिटिश सरकार की सत्ता के ध्रुवीकरण के प्रति ललक ने ग्रामीण भारत सक्षम लोकतंत्रीय इकाइयों को प्रभावहीन बनाने का प्रयास किया। इस दौरान सरकारी नियंत्रण बढ़ाने तथा पंचायतों के अधिकार कम करने के बहुत प्रयास किये गये। जिसके प्रभाव उनके भी हक में नहीं थे। अँग्रेजी राज में ही उनको इसका आभास हो गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि 1909, 1919 तथा 1935 के अधिनियम की गलती को सुधारने की दिशा में कदम थे। किन्तु पूरी तरह से जर्जर कर देने के बाद छोटी–मोटी मरम्मत से ढ़ाचे को ठीक करने में वे सफल नहीं हो पाये। महात्मा गांधी ने पंचायतों को पुनः जनाधार पोषित संस्था बनाने का प्रयास किया। ग्राम स्वराज्य जिसमें पंचायतों की भूमिका महत्वपूर्ण है। गांधीवाद अर्थ दर्शन का अभिन्न अंग बना। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद स्थानीय स्वशासन की संस्थाओ को सक्रिय एवं सुदृढ़ बनाने के प्रयास शुरु किये गये। संविधान में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अनुच्छेद 40 में यह व्यवस्था की गई है कि राज्य ग्राम

पंचायतों की स्थापना के लिए अग्रसर होगा और उनको ऐसी शक्तियाँ व अधिकार देगा जो उन्हें स्वायत्त इकाइयों के रुप में कार्य करने योग्य बनाने में सहायक हो। इस व्यवस्था के अनुरुप देश के अन्य भागों में पंचायते बनी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के कुछ सालों के बाद त्रिस्तरीय पंचायती राज के ढांचे की स्थापना से लोगो में इसके प्रति उत्साह था। किन्तु लोगो में यह भावना धीरे–धीरे बलवती होती गई कि पंचायतों से ग्रामीण पुनर्निर्माण और सक्षम लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की आशा को पूरा नहीं किया जा सका है। समय–समय पर लोगो की पंचायती राज से संबंधित आकांक्षा को पूरा करने का प्रयास सरकार द्वारा किया गया।

सन् 1992 में, संविधान के 73 वे संशोधन में पंचायती राज संस्थाओं की यथा स्थिति समाप्त करने और उन्हे अधिक सुदृढ़ करने तथा उनकी प्रभावी भूमिका सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया। इस संशोधन के अनुसार अब जनतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की इन संस्थाओं को संवैधानिक स्तर प्राप्त हो गया है। अब राज्यों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि ये पंचायत संस्थाओ का गठन करें। संशोधन में पंचायतों की संरचना को विवेकपूर्ण बनाने की व्यवस्था है पंचायती राज संस्थाओ में प्रभुता संपन्न वर्ग विशेष के नेतृत्व के वर्चस्व को भी यथासंभव कम करने का प्रयास किया गया है। इसके लिए यह व्यवस्था की गयी है कि उनमें महिलाओं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोगों के लिए स्थान सुरक्षित किया गया है। संविधान के इस संशोधन में महिलाओं पर विशेष ध्यान दिया गया है। इसके अनुसार हर वर्ग के लिए आरक्षित पदों की एक तिहाई संख्या पर आरक्षण उस वर्ग की महिलाओं का होगा।[2]

पंचायती राज अधिनियम के अनुसार निर्वाचित इकाइयों को पांच साल का स्पष्ट कार्यकाल दिया गया है। इन्हें स्थानीय करों को लगाने, वसूल करने और खर्च करने का अधिकार है। पंचायतों को सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास के अन्तर्गत आने वाले 21 विषयों के अन्तर्गत कार्यक्रम तैयार करने का अधिकार दिया गया है। इनमें खेती, छोटी सिंचाई, पशु व मछली पालन, सामाजिक वानिकी और वनों की सामान्य उपज, छोटे उद्योग, खादी और ग्रामोद्योग, ग्रामीण भवन निर्माण, पेयजल, ईंधन, चारा, सड़क, पुल, बिजली, ऊर्जा के नये स्त्रोत, गरीबी दूर करने के कार्यक्रम, शिक्षा–प्राथमिक, माध्यमिक, तकनीकी, प्रौढ़ और अनौपचारिक, पुस्तकालय, हाट और मेले, स्वास्थ्य केन्द्र, परिवार कल्याण, महिलाओं और बच्चों का विकास, समाज कल्याण, कमजोर वर्गो विशेषकर हरिजनों और आदिवासियो का कल्याण, जल वितरण व्यवस्था सामुदायिक साधनों का रख रखाव तथा भूमि के कानून और चकबंदी आदि शामिल है। इस प्रकार से पंचायती राज के अन्तर्गत ग्राम विकास के बहुत सारे पहलू सम्मिलित है। सिर्फ आवश्यकता है कि पंचायतों को सजग और सक्रिय करने की। समाज के हर वर्ग का प्रतिनिधित्व तो इसमें सुरक्षित किया जा चुका है। यदि हमारी पंचायती राज संस्थाएँ अपने दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वाह करे तो गांवो का सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक विकास अवश्य होगा।

पंचायती राज संस्थाओं में हर वर्ग की महिलाओं को आरक्षण देकर निश्चित रुप से इनको ग्राम विकास की मुख्य धारा में जोड़ने का प्रयास किया गया है। यदि समाज के इस कार्य में

जागरुकता लाई जाय तो विकास के सारे कार्यक्रम चाहे वे मजदूरी, रोजगार से संबंधित हो या स्वरोजगार से संबंधित हो महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान होने के कारण गांवो को विकसित किया जा सकता है। इस प्रकार विकास के कार्यों में महिलाओं की भागीदारी व नेतृत्व आगे चलकर विधायिका में भी आरक्षण देने का रास्ता प्रषस्त होगा। इस प्रकार विधायिका में मिले आरक्षण से महिलाओं की राष्ट्रीय विकास में भागीदारी को सुनिश्चत किया जा सकता है। यह निसंदेह भारतीय राजनीति को नई दिशा प्रदान करेगा। [3]

पंचायतो में महिलाओं को आरक्षण, सन् 1992 में किए गये दो संविधान संशोधनो के जरिए दिया गया था। आज इस व्यवस्था को पूरा एक दशक बीत चुका है और समीक्षा करने पर पता चलता है कि स्थिति जस की तस है। आज भी विभिन्न स्तरों से चुनाव जीत कर आयी महिलाएँ संविधान द्वारा दिए गये अपने अधिकारों का आजादी से प्रयोग कर पाने की स्थिति में नहीं है। वे सत्ता में तो आ रही है लेकिन स्वतंत्रतापूर्वक फैसले नहीं ले पा रही है। आज भी वे पुरुशों के बल पर ही कुर्सी पर काबिज होती है और फिर उन्हीं के दिषा–निर्देषो पर चलने को बाध्य होती है। इस कठपुतलीपन का एक कारण जहाँ उनकी अशिक्षा और राजनैतिक निष्क्रियता है वहीं इसका दूसरा कारण है कि आज भी उन पर से पुरुषों के बंधन ढीले नहीं पड़े है। इसीलिए वे कोई भी निर्णय लेने से पहले किसी पुरुष का मुहँ ताकती है, फिर वह पुरुष चाहे उसका पति हो या देवर या फिर भाई।

पुरुषों की इस नकारात्मक मानसिकता व सोच की यह कल्पना, मात्र कपोल–कल्पना ही नहीं है। पुरुषों की इस 'एंटी वीमेंन' सोच को साबित करने वाली कई बाते है। समूची दुनिया की तरह हमारे देश में भी लगभग आधी जनसंख्या, महिलाओं की ही है लेकिन फिर भी पुरुष–प्रधान इस राजनैतिक व्यवस्था ने पंचायतों में महिलाओं को 48 या 50 प्रतिशत आरक्षण देने की बात स्वीकार नहीं की। आधी दुनिया और आधे आसमान के सम्मान से नवाजने के बाद भी उन्हे मात्र 33 प्रतिशत आरक्षण ही क्यो दिया गया। आरक्षण का सिद्धांत यही है कि प्रत्येक वर्ग को उसकी संख्या के हिसाब से सभी जगह भागीदारी मिलनी चाहिए। इसीलिए तो कुल जनसंख्या का 25 प्रतिशत होने पर दलितों को एक–चौथाई आरक्षण मिलता है, पिछड़ों की जनसंख्या 50 प्रतिशत होने पर उन्हे भी पूरा आधा आरक्षण मिलता है। यदि दलितो तथा पिछडों को उनकी आबादी के हिसाब से आरक्षण मिल सकता है तो फिर आधी दुनिया के मामले में ऐसा क्यों नहीं हो पा रहा है ? कारण साफ है और सबको पता है।[4]

यह बिल्कुल सही है कि भारतीय संविधान ने महिला तथा पुरुषों के बीच लिंग के आधार पर कोई भेद नहीं किया है और दोनों को समान रुप से अधिकार दिए गये है। आजादी के बाद संविधान द्वारा लिंग–भेद की समस्त परंपराओं को दर किनार करते हुए महिलाओं को भी समान अधिकार और समान सहभागिता के अवसर दिए गये थे, लेकिन महिलाएँ अपने अधिकारों का प्रयोग धरातल पर नहीं कर पा रही है तो इसका कारण उनमें राजनैतिक व सामाजिक चेतना की कमी होना ही है। पुरुशों की मानसिकता भी इसके लिए बराबर की

जिम्मेदार है। आज भी पुरुष–प्रधान समाज, महिला को सिर्फ भोग्या बनाए रखन की अपनी सदियों पुरानी मानसिकता से उबर नहीं पाया है।

पंचायती चुनावों में हमें ऐसे एक नहीं कई उदाहरण देखने को मिले है जिनमें महिलाओं के लिए आरक्षित स्थानों पर खड़ी महिला उम्मीदवारों के पूरे चुनाव का संचालन, उनके पतियों, भाइयों या अन्य पुरुष रिश्तेदारों द्वारा किया गया । समूची निर्वाचन–प्रक्रिया में महिला उम्मीदवार के दर्शन सिर्फ नामांकन के समय ही हुए और बाकी का काम पुरुष रिश्तेदारों द्वारा ही किया गया। उम्मीदवार घर की दहलीज के भीतर चूल्हें में पाटती रही और उनके पतियों ने उनके लिए वोट मांगे। महिला उम्मीदवारों के पति, देवर भाई उन्हे जितवाना तो चाहते थे लेकिन घूंघट का पहरा हटाने को वे तैयार नहीं थे। वे उन्हे जितवाना तो चाहते थे लेकिन उनकी सत्ता में भागीदारी के लिए नहीं, अपितु अपने राजनैतिक स्वार्थों के लिए।

ऐसी महिला उम्मीदवार जीती भी लेकिन फिर भी घर की दहलीज लांघने की उन्हें इजाजत नहीं मिली, वे जीत कर भी चारदीवारी के भीतर तक ही सीमित रही। पुरुषों ने उन्हे सिर्फ कागज या रजिस्टर पर अंगूठा लगाने या हस्ताक्षर करने भर का अधिकार दिया था। पिछले पंचायती चुनावों के तुरंत बाद एक गैर–सरकारी स्वैच्छिक संगठन ने राज्य सरकार की एक एजेंसी के साथ मिल कर उत्तर प्रदेश में एक सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण के नतीजे चौकाने वाले थे। सर्वेक्षण के मुताबिक उत्तर प्रदेश के पंचायती चुनावो में आरक्षण का लाभ लेकर 80 प्रतिशत से भी अधिक ऐसी महिलाएँ जीत कर (या जितवा कर) आयी, जिन्हे रबर – स्टैंप के अलावा और कुछ कहा ही नहीं जा सकता था। उत्तर प्रदेश, बिहार और उड़ीसा जैसे बीमारु प्रदेश हों या फिर महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, और आंध्र प्रदेश जैसे अपेक्षाकृत काफी विकसित व शिक्षित राज्य हो, स्थिति सभी जगह कमोबेश एक जैसी ही है। इन सभी राज्यों में ऐसे एक नहीं, कई–कई उदाहरण है, जहाँ ग्राम–पंचायत, विकास खण्ड या जिला पंचायतों में निर्वाचित महिलाओं के स्थान पर उनके पति, भाई या पुरुष अभिभावक ही बैठकों में भाग लेते है, अधिकारियों से बातचीत करते है।[5]

सर्वेक्षण के मुताबिक अधिकतर निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधियों को तो अपने राजनैतिक अधिकारों का पता तक नहीं है, उन्हें नहीं पता कि सत्ता में रहते हुए वे क्या–क्या कर सकती है, कैसे जनसेवा के कार्य को अंजाम दे सकती हैं विधायिका में महिला आरक्षण विधेयक पेश करते समय हमें यह भी सोचना होगा कि हमसे भूल कहाँ हुयी, गलती किसकी है ? और यह गलती कैसे सुधारी जा सकती है ? इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का बस एक ही कारण समझ में आता है–शिक्षा और राजनीतिक जागरुकता की कमी। सत्ता में भागीदारी के लिए आवश्यकता है राजनैतिक सोच की, राजनैतिक विचारधारा की और राजनैतिक समझदारी की। और इस राजनैतिक सोच को पैदा किया जा सकता है मात्र राजनैतिक जागरुकता से।

विश्व परिप्रेक्ष्य में देखें तो हमारे यहाँ शिक्षा का प्रसार बेहद कम है। महिला शिक्षा के मामले में तो हमारी स्थिति और भी दयनीय है। महानगरों और कुछ शहरों को छोड़ दे तो दूरदराज के हमारे गांवो में आज भी लड़कियों का दिन सुबह चूल्हे–चौके से शुरु होता है और रात को

रसोई की सफाई के साथ खत्म हो जाता है। अधिकतर लड़कियाँ स्कूलों का मुहँ तक नहीं देख पाती और जो किसी तरह गांव की प्राइमरी पाठशाला में पहुँच भी जाती है तो पाँचवीं के बाद उनकी पढ़ाई खत्म करवा दी जाती है क्योंकि उनके परिवार वाले आगे की पढ़ाई के लिए उन्हे नजदीक के दूसरे गाँव या पास के कस्बे में नहीं भेजना चाहते। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को आरक्षण के साथ–साथ सरस्वती की प्रतीक किताबें भी दी जाएँ, उनके हाथों में चकले–बेलन के साथ–साथ कलम भी थमाई जाएँ।

होना तो ये चाहिए था कि पंचायती चुनावो में आरक्षण देने के बाद निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के लिए विशेष प्रशिक्षण शिविर चलाए जाते जिनमें उन्हें संबंधित कार्यों का प्रशिक्षण देने के साथ–साथ यह भी बताया जाता कि उनके राजनैतिक अधिकार क्या है, सामाजिक दायित्व कौन–कौन से है, और सत्ता में भागीदारी उन्हें कैसे प्राप्त करनी है ? लेकिन हमने ऐसा कुछ भी नहीं किया क्योंकि इससे उनके जागरुक हो जाने का खतरा था, उनके समझदार बन जाने का भय था और उनके बराबर में आ खड़े होने की आशंका थी। और फिर महिला आरक्षण का झुनझुना उनके हाथों में थमा कर हमारा मकसद तो पूरा हो ही गया था, आधी दुनिया के इस वोट–बैंक को रिझाने और दुनिया को दिखाने में तो हम सफल हो ही गये थे।[6]

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देते समय हमारे पुरुष समाज के प्रतिनिधि अच्छी तरह से जानते थे कि इन चुनावो में जो महिलाएँ विजयश्री का वरण करने के बाद सत्ता में भागीदारी को आगे आएंगी उनमें से अधिकतर वे महिलाएँ होंगी जो अशिक्षित और राजनैतिक रुप से निष्क्रिय होगी तथा परंपरागत रुप से पुरुषों की मुठ्ठी में कैद होगी। हमारी पुरुष–प्रधान राजनैतिक व्यवस्था ने तब सोचा था कि ऐसी महिलाओं को रबर–स्टैंप के रुप में प्रयोग करना कोई कठिन काम नहीं होगा और उन्हे कठपुतली की भॉति अपने इशारो पर नचाना आसान होगा। बाद के अनुभव बताते है कि पुरुषों की वह सोच ठीक साबित हुयी, पुरुष–प्रधान व्यवस्था ने जो सोचा था बिल्कुल वैसा ही हुआ ।[7]

पुरुष–प्रधान व्यवस्था ने यह सोच, सामूहिक रुप से विकसित नहीं की थी, इसके लिए कोई बैठक या सम्मेंलन नहीं हुआ था। मनोविज्ञान कहता है कि बहुत सी बातें हमारे अवचेतन मन में पड़ी रहती है, जो मनुष्य की सदियों पुरानी मानसिकता का योजनारहित परिणाम होती है। महिलाओं को जब नई पंचायतराज व्यवस्था में 33 प्रतिशत स्थानों का आरक्षण मिल गया तो पुरुष – वर्ग ने घरेलू औरतों की आड़ में अपना शासन चलाने की डगर अपना ली। यह सब किसी योजना के बिना ही संपन्न हुआ, क्योकि जैसा कि अभी हमने कहा है बहुत से निर्णय मनुष्य सोच – विचारकर नहीं लेता है बल्कि वे सदियों की परंपरा एवं मानसिकता के गर्भ से अपने–आप फूट निकलते है। जब आरक्षण का एक ऐसा ही प्रश्न महिलाओं के लिए संसद और विधान–सभाओं में 33 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने का आया तो इसके लिए राजनीतिक दल इतनी आसानी से तैयार नहीं हो पाए, जितनी आसानी से वे पंचायतराज व्यवस्था में महिलाओं को आरक्षण देने के लिए तैयार हो गए थे। क्यों इसका एक कारण तो संभवतया यही रहा है कि संसद और विधानसभाओं के प्रतिनिधित्व में आकाश और पाताल का अंतर है। साधारण पुरुष

इस बिंदु को भली प्रकार जानता है कि पंचायतराज व्यवस्था में वह अपने परिवारों की जिन शिक्षित, अशिक्षित महिलाओं को बहुत ही कम चुनाव–व्यय पर चुनाव में जिताकर उनकी आड़ में स्वंय शासन कर सकता है, वैसा संसद एवं विधानसभाओं में इतना आसान नहीं है। समाज के एक साधारण पुरुष ने भी अपने अनुभव के बल पर यह बात जान ली है कि जब वह अपने बीच के और अपने–जैसे पुरुष प्रतिनिधियों को ही संसद और विधानसभाओं में भेजने के लिए सक्षम नहीं हो रहा है, वहाँ भी साधन–संपन्न लोग ही अपनी शक्ति और पैसे के बल पर विजयी होकर पहुचँ रहे है, तब वह आम महिलाओं को संसद और विधानसभाओं में जनप्रतिनिधि बनाकर कैसे भेज सकेगा ? विचित्र बात है कि इस आरक्षण का विरोध जहाँ सामान्य पुरुषों की ओर से हुआ, वहीं कई प्रमुख राजनीतिक दलों के बड़े नेताओं ने भी उसका विरोध किया। उन्हें यह आशंका सताने लगी कि इतना बड़ा आरक्षण देने के उपरांत महिलाओं की ओर से उनके अधिकारों को चुनौती मिल सकती है। इसलिए उन्होने अल्पसंख्यक महिलाओं के लिए भी अलग से आरक्षण देने का सुझाव रखते हुए इस बिल का विरोध किया। परिणामतः अभी तक यह विधेयक संसद में लंबित है। यह सही है कि देर–सबेर इसे पारित हो ही जाना है। किंतु जिस तरह वोट की राजनीति इसका समर्थन कर रही है, उसी तरह राजनीतिक हथकंडेबाजी इसके विरोध में मुखर है। पुरुषों ने पंचायतीराज व्यवस्था में घरेलू महिलाओं को इसलिए जाने दिया कि वे पदासीन होते हुए भी पुरुषों के चंगुल से बाहर जानेवाली नहीं थी, किंतु वे महिलाओं को दिल्ली और अन्य प्रांतो की राजधानियों में भेजना इसलिए पसंद नहीं कर रहा है कि उसे महिलाओं के अपने हाथ से निकल जाने डर है।[8]

आज नहीं तो कल संसद में महिला आरक्षण विधेयक पारित हो ही जायेगा लेकिन गूढ़ प्रश्न फिर भी वहीं जस का तस है कि मात्र आरक्षण मिल जाने और महिलाओं के विधानसभाओं और संसद में पहुँच जाने से क्या महिलाओं की सत्ता में भागीदारी भी सुनिश्चित हो जायेगी। सवाल है कि एक आम भारतीय महिला वास्तव में चाहती क्या है ? वो चाहती है सिर्फ समाज में समानता का अधिकार, समानता का आधार और पुरुषों जैसा ही मान–सम्मान। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए राजनैतिक अधिकार और आरक्षण तो जरुरी है ही, लेकिन साथ ही आवश्यकता है पुरुशों की रुढ़िवादी सोच में मौलिक बदलाव लाने की, पुरुष–प्रधान राजनीतिक व्यवस्था को उखाड़ फेकने की और महिलाओं को हीनभावना से उबार कर राजनीतिक रुप से जागृत करने की । हमें अपनी विधायिका में सशक्त महिला राजनीतिज्ञ चाहिए न कि डमी और कठपुतली राजनीतिज्ञ जो पुरुषों के इशारों पर ही नाचती रहे। इसलिए जरुरी है कि विधायिका में महिलाओं को आरक्षण देने के साथ–साथ उन्हे राजनैतिक रुप से जागरुक भी किया जाए ताकि वे सच्चे अर्थों में राजनैतिक भागीदारी पा सकें, स्वतंत्र राजनीतिक निर्णय ले सके और आधी दुनिया के लिए कुछ सार्थक काम कर सकें।

संदर्भ ग्रंथ

1 सिंह मीनाक्षी, *महिला कानून* ए महेन्द्र बुक कम्पनी, हरियाणा, 2013, पृष्ठ– **226**

2 पाण्डेय प्रशान्त, *पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी* ए योजना, जुलाई 1999, अंक 4, पृष्ठ **19–20**

3 शर्मा कृष्ण दत्त, दाधीच सुनीता, *ग्रामीण विकास की ओर राजस्थान पंचायत कानून*, मार्गदर्शिका, पंचायत क्या करे ? कैसे करे ? ए जयपुर, पंचायती राज जन चेतना संस्थान, 2000 पृष्ठ– **6**

4 मिश्रा सुबोध, *भारत में पंचायती राज की संवैधानिक प्राण प्रतिष्ठा* ए योजना, 1994, पृष्ठ– **16**

5 चन्द्र उमेंश , *पंचायती राजः महिलाओं से अपेक्षाएं* ए योजना, 1996, पृष्ठ– **16**

6 बाबेल बसन्ती लाल, *वृहद राजस्थान पंचायती राज कोड* ए बाफना पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2002, पृष्ठ– **27**

7 मायाराम शैल, *भारत में पंचायत, प्रशासन व महिलाएँ– एक शोध* ए पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2001, पृष्ठ– **19**

8 सक्सेना, के.एस., *विमेंन्स पॉलिटिकल पार्टिसिपेशन इन इण्डिया* ए सबलाइम, पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1999, पृष्ठ **96–97**

9 रंजन राजीव, चुनाव, *लोकसभा और राजनीति* ए दिल्ली, 2000, पृष्ठ– **330**